शिवनारायणी/सम–सामयिक एवं परवर्ती संत काव्य–एक अध्ययन

7

डॉ0 शिल्पी श्रीवास्तव*

सार

प्रस्तुत शोध पत्र में १०८ स्वामी शिवनारायण के काल के सम–सामयिक संतों एवं परवर्ती संतों के साहित्य का अध्ययन करते हुए उनमें सामंजस्य व विभिन्नता को उजागर करने का सफल प्रयास किया गया है।

बीज शब्द – *संत शिवनारायण, शिवनारायणी काव्य, परवर्ती संत काव्य।*

प्रस्तावना(संत काव्य)

कबीर के प्रादुर्भाव के साथ हिन्दी प्रदेश में भक्ति काव्य की जिस निर्गुण धारा का आरंभ हुआ था वह वर्तमान अध्ययन–युग में भी प्रवाहित हो रही थी। इस समय इसका वेग शिथिल पड़ गया था और उसमें समन्वय की प्रवृत्ति प्रधान हो गयी थी। अध्ययन युग के संतों में बाबा लाल (सरहिन्द वाले, संवत् 1700 वि0) ने सूफीमत एवं वेदान्त के आध्यात्मिक विचारों का, प्राणनाथ (राजस्थान वाले, सं0 1710 वि0) ने ईसाई और इस्लाम मतों का, धरणीदास और **दुःखहरण दास** (सं0 1730) ने सूफी प्रेम–साधना का तथा चरणदास (दिल्ली वाले, सं0 1787 वि0) ने भागवत पुराण के आध्यात्मिक विचारों का संतों की आध्यात्मिक विचार–धारा एवं साधना के साथ समन्वय करने का प्रयास किया था। इस युग के संतों ने अपने को पूर्ववर्ती प्रसिद्ध संतों का अवतार घोशित करने में गौरव अनुभव किया। वस्तुतः ये परवर्ती संत किसी–न–किसी रूप में अवतारवाद की भावना को स्वीकार करने लग गये थे। उच्चवर्गीय धार्मिक संस्कारों के प्रति विरोध भावना अब भी चल रही थी किन्तु उसमें परम्परा पालन की प्रवृत्ति ही विशेष रूप से कार्य कर रही थी। कृष्ण काव्य के प्रभाव स्वरूप संत कवि भी गोकुल में कृष्ण के साथ होली खेलने की कल्पना करने लगे थे। यह अवष्य था कि इनका गोकुल, वृंदावन तथा उसमें क्रीड़ा करने वाली सखियाँ, सभी घट के भीतर ही कल्पित किये गये थे।

दिल्ली का उर्दू साहित्य–

उर्दूकाव्य का सूत्रपात वस्तुतः दक्षिण के गोलकुंडा और बीजापुर के मुसलमानी राज्यों में पर्याप्त पहले हो चुका था। सन् 1686 ई0 के लगभग जब औरंगजेब ने इन मुसलमानी राज्यों को तहस–नहस कर दिया तो दकनी साहित्य के अंतिम कवि वली (1667 ई0 से 1741 ई0) उत्तरी भारत में चले आये। उस समय दिल्ली में फारसी काव्य की प्रतिष्ठा थी। वली की गजलों की मार्मिकता ने दिल्ली के साहित्यिक वातावरण में नवीन चेतना का संचार किया। 1723 ई0 में वली साहब जब दूसरी बार दिल्ली आये तो अपनी लोकप्रियता देखकर उन्होंने अपने गजलों की भाषा को दिल्ली जनपद की भाषा में ढाल लिया। दिल्ली के कवियों ने भी

* *सी–12, साउथ सिटी, रायबरेली रोड, लखनऊ–226001, उ0प्र0, भारत*

उनका अनुकरण किया। इस प्रकार उर्दू गजल की नींव पड़ी। इस उर्दू का उत्तरी भारत में सूत्रपात मुहम्मद शाह रंगीले (सन् 1719–1748) के दरबार में हुआ। वली का प्रभाव अधिक काल तक न रहा और आगे चलकर फारसी कवियों ने दकनी भाषा को लचर बताकर अपनी नवीन शैली का प्रयोग किया और इस शैली में प्रयुक्त भाषा का नाम रेख्ता (उठाया हुआ) रखा। 1800 ई0 तक इस रेख्ता में फारसी शब्दों की बहुतायत रही। **संत शिवनारायण इन्हीं मुहम्मद शाह और वली साहब के सम–सामयिक थे** । अतः उनके काल में उर्दू साहित्य का आरम्भ हो गया था, यह निर्विवाद है। संतों की भाशा पर इस उर्दू भाषा का पर्याप्त प्रभाव है, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता है।

संत शिवनारायण एवं उनके शिष्यों ने जिस समय साहित्य क्षेत्र में अपनी निर्गुण कही जाने वाली काव्यधारा को लेकर प्रवेश किया उस समय हिन्दी प्रदेशान्तर्गत यही काव्यधाराएँ प्रवाहित हो रही थीं। इस विवेचना के आधार पर हम शिवनारायणी काल की निम्नलिखित काव्यगत विशेषताएँ लक्षित कर सकते हैं–

1. रीति एवं श्रंगार–काव्य–रचना युग की सर्वमान्य प्रमुख प्रवृत्ति थी।
2. कृष्ण–काव्य आध्यात्मिक सूक्ष्मता को त्यागकर भौतिक श्रंगार धारा के रूप में प्रवाहित हो रहा था।
3. राम–काव्यान्तर्गत भी कृष्ण–काव्य के अनुकरण पर श्रंगारिकता का प्रवेश हो रहा था।
4. सूफियों के प्रेमाख्यानक काव्य अब भी पर्याप्त प्रचलित थे और वे निर्गुण संतों को प्रभावित कर रहे थे।
5. संतों में नवीन चिन्तन की क्षमता समाप्त हो गयी थी और वे अनुकरण की ओर प्रवृत्त थे।
6. वीरकाव्य अब भी लिखा जा रहा था किन्तु युगजनित उपादेयता के अभाव में निष्प्राण था।
7. श्रंगारिकता का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव प्रायः सभी काव्यधाराओं पर पड़ रहा था।
8. हिन्दी काव्य की इन प्रमुख धाराओं के अतिरिक्त दिल्ली में उर्दू काव्य का प्रारम्भ हो चुका था।

भाव पक्ष– संत शिवनारायण एक सच्चे भक्त थे। आराध्य के प्रति अनन्त प्रेम उनकी साधना का सबसे बड़ा अंग था। उनकी यह रति भावना मुख्यतः दो रूपों में व्यक्त हुई है–दास्य–रति और दाम्पत्य–रति। दास्य–रति के पद थोड़े हैं। दाम्पत्य–रति को ही इस संत साधक ने मीरा तथा अन्य संत कवियों की भाँति अधिक विस्तार दिया है। संत शिवनारायण की दास्य भावना सच्ची थी। उन्हें अपनी हीनता का और आराध्य की सहिष्णुता का भली–भाँति परिचय था। उनके सम्मुख पूर्ववर्ती भक्तों की विशाल परम्परा थी जिन्हें उनके अवगुणों पर ध्यान न देकर आराध्य देव ने संकटमुक्त किया था। उन्हें विश्वास था कि ध्रुव, प्रहलाद, लोमश, पांडव, गणिका, गृद्ध, अजामिल, शबरी, रामानन्द, कबीर, नामदेव, नानक, मलूक आदि अनेक

भक्तों का कष्ट निवारण करने वाला उनके अवगुणों पर ध्यान न देकर उनके कर्मों के औचित्य का विचार न कर, उनके हृदय की मलिनता पर तरह देकर निश्चय ही उन्हें भवसागर से मुक्ति लाभ करायेगा। यही विश्वास भक्तों के जीवन का सर्वस्व है। संत शिवनारायण ने भी इसे ही जीवन सर्वस्व मानकर भक्तिमार्ग में प्रवेश किया था। वे कहते हैं–

सतगुरु अवगुन हमरो नेवारो।
मैं मतिहीन मलीन ओछ बुधि कर्म न गनेउ हमारो।
भवसागर देखि होत त्रास जीव वेगि लगावो कीनारो।
रामानन्द कबीर मलूका नानक नामदेव तारो।
ध्रुव प्रहलाद शशीशन लोमस पांडव जरत उबारो।
गनी का गीध अजामिल सेवरी जुठफल कीयो है अहारो।
देव दनुज नर पसु पंछी जन सभ के संकट टारो।
संकट सभके टारि दियो है जे ले नाम तिहारो।
शिवनारायण नाम संतपति बलि बलि जरत तिहारो।[1]

कहना न होगा कि संत शिवनारायण गुरु को ईश्वर के रूप में देखते थे। यही कारण है कि उनका यह आत्म–निवेदन सतगुरु के प्रति है। सांसारिक विषमताओं को देखकर कभी–कभी भक्त का आत्म–विश्वास विचलित हो उठता है। वह व्याकुल होकर प्रभु चरणों की ओर अग्रसर होता है। नित्य प्रति उनके गुणगान की शपथ लेता है। उसके हृदय की व्याकुलता मुखरित होती है–

अब प्रभु मोहि छुड़ावत चिंता मैं हरदम गुन गावौं।
भय छोड़ाय निश्चिंत करो प्रभु चरन शरन मह आवों।।[2]

इतने से भी कार्य चलता प्रतीत नहीं होता। वह दूसरा मार्ग ग्रहण करता है। प्रभु को उनके विरद की शपथ दिलाता है। उनको असमर्थता की पुकार मचाकर उत्तेजित करता है। अपनी अधमता को उभारकर सम्मुख रखता है। यहाँ तक कि प्रभु की तारन शक्ति को भी चुनौती देता है–

जो तोहि के कहा अधम उधारन मोहि अस अधम उधारो।
वह तो अधम अधम नहिं होते जिन जिन अधमन तुम तारो।।
अब तो काम पड़ा अधमन से बुद्धि बल देखब तोहारो।
हम तुम बीच दया सतगुरु के को जीतो को हारो।
शिवनारायण अधमन के नायक हमरो पंथ नियारो।

भक्ति–भावना का यह स्वरूप विशेषतः सगुण भक्तों में पाया जाता है। आत्महीनता, आराध्य की महत्ता, उसके विरद का स्मरण, पूर्व उद्धारित भक्तों के स्मरण से आशा का संचार, दैन्य प्रदर्शन, गुण–कथन आदि का विस्तृत वर्णन तुलसी और सूर की रचनाओं में बिखरा मिलता है। निर्गुन संतों में दैन्य एवं आत्म–निवेदन की भावना आराध्य की अरूपता के कारण

विस्तार न पा सकी। यद्यपि प्रधानतया भक्त होने के नाते निर्गुन संत भी भक्तों की इन सामान्य विशेषताओं से वंचित न रह सके। परवर्ती संतों में क्रमशः इस भावना का विकास देखने को मिलता है। इसी कारण से संत शिवनारायण के उपर्युक्त पदों में भी भक्ति का यह रूप देखने को मिल जाता है।

दाम्पत्य–रति (प्रणयानुभूति)– संत षिवनारायण के प्रणयानुभूति से भक्ति पदों में ही भाव–पक्ष की रमणीयता देखी जा सकती है। निश्चय ही यह प्रणयानुभूति **रति** स्थायी से पुष्ट है। आश्रय स्वयं भक्त है। आलंबन उसका आराध्य पुरुष है। साहित्यिक क्षेत्र में इस युग की सर्वप्रमुख ध ारा श्रंगार–काव्य की रही है। श्रंगार–रस के नायक–नायिका सामान्यतया गोपी और कृष्ण माने गये हैं। इस प्रवृत्ति से प्रभावित होने के कारण परवर्ती संतों ने भी अपने आराध य को कृष्ण रूप में सम्बोधित किया है। स्वयं अपने को गोपियों या कहीं–कहीं राधा के रूप में कल्पित किया है। संत शिवनारायण ने एक ओर संत–परम्परा का पालन करते हुए अपने आराध्य को **राम**, **रमइया**, **सतोगुरु**, **साहेब** आदि नामों से अभिहित किया है, तो दूसरी ओर, कृष्ण–काव्य की श्रंगारिक धारा से प्रभावित होकर **कँधइया**, **काँधा**, **मोहन**, **हरि** आदि नामों से भी पुकारा है। साथ ही, लोक–साहित्य एवं जन–जीवन के अत्यधिक निकट होने के कारण उसकी भावनाओं के अनुकूल सजन, पिया, बलम, परदेसिया आदि संज्ञाएँ भी दी हैं। आराध्य के साथ रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करते हुए भक्त कवि की रति–भावना उन सभी स्थितियों को स्पर्श करती हुई विकसित हुई है, जिनकी स्थिति श्रंगारी कवियों की रचनाओं में पायी जाती है। सामान्यतया संत शिवनारायण के रागात्मक अनुभूतिपरक चित्रों को संयोग और वियोग के अंतर्गत रखकर ही देखा जा सकता है।

संयोग चित्र– संयोग के चित्रों में संत शिवनारायण ने आराध्य का स्वरूप प्रायः कृष्ण का ही रखा है। भक्त के हृदय का राग, गोपियों या स्वयं राधा के रूप में साकार हुआ है। जो कि निम्न पंक्तियों से स्पश्ट है–

तोहि खोजत कुँवर कन्हाई वष्शभान किषोरी।
सब सखियन मिलि बन बन आई केहु साँवरि केहु गोरी।
ले ले रंग अबीरा अरगजा हाथ कनक पिचकारी ।
घायल वान ललन लइ निकले घेरि लियो बनवारी।
सब मिलि घेरि अपन वश कीन्हों देत सखी सब गारी।
शिवनारायन बिनती करत हैं लेहु सखी रस झारी।।[3]

उपर्युक्त पदों में गोपियों की बन आयी है। बेचारे कृष्ण को विवश होना पड़ा है। उनकी सारी क्रीड़ा–चातुरी समाप्त हो गयी है। किन्तु अन्यत्र उनका कौशल सराहनीय है जो कि निम्न पद से स्पष्ट है–

होरी का संग खेलौं व्रज काँधा करत लड़िकाई।
अपनो रंग सबन पर डारत हमरो देत बहाई।
नंद नंदन मोरि बहियाँ मरोरी हँसि हँसि प्रीति बढ़ाई।

बार–बार बरजो नहिं माने अति ही ढीठ डरे न डेराई।
मन माने चाहे सो करिले कुल की कानि गँवाई।
सब रस लेत लाज नहिं मानत मोरि कछु न बसाई।
शिवनारायन देखत अनन्दा जोरि आनि मिलाई।।[4]

होरी के अतिरिक्त क्रीड़ा और घाटो रागों में लिखे पदों में भी संयोग–श्रंगार की सरसता और रति–भाव की विषदता देखी जा सकती है। इन रागों में निर्मित पदों में मिलन के विविध प्रसंगों की कल्पना की गयी है। यह प्रसंग–कल्पना भी कृष्ण–भक्तों के मिलन–प्रसंगों से ही प्रभावित है। कहीं यमुना के तट पर काँधा के दही खाने, मटुकी फोरने और चीर फाड़ने की चर्चा है[5], तो कहीं एकान्त में बलात् बाँह पकड़ने की शिकायत है।[6] कहीं काँधा के नित्य अपनी गली में आने पर उनकी निन्दा की गयी है[7] तो कहीं किसी गोपी को उन कुंज गलियों में जाने से मना किया गया है जिनमें कृष्ण के अनाचार की आषंका है।[8] इन प्रसंगों में भी संत शिवनारायण की अन्तर्दृष्टि अध्यात्मपरक ही रही है। कहीं–कहीं इन्हीं पदों में गोपियों की रूप–चर्चा भी है। उनके अभिसारिका होने का संकेत भी किया गया है, किन्तु अंत में समस्त श्रंगार भावना पर बड़ा ही दृढ़ आध्यात्मिक अंकुश लगा दिया गया है, जो कि निम्न पंक्तियों से स्पष्ट है–

गुजरिया चली हो नयना भरि दिए री।
चाल मराल कटि केहरि कमल मुख चन्द ललाट छवि दिपेरी।
बोलत पिकबयनी चितवत मृगनयनी माती प्रेम रस पियेरी।
जात अकेली अलबेली कुंजन बन, **शिवनारायण** देखि हिए री।[9]

उपर्युक्त पद की अलंकार–योजना, पंक्ति–प्रवाह, शब्द–चयन तथा भावरसता किसी भी रीतिकालीन कवि के सम्मुख निःसंकोच रखी जा सकती है। अंतर केवल यह है कि रीतिकालीन कवि लौकिक श्रंगार भावना से भावित होकर ऐसा कहता है और संत शिवनारायण जीवात्मा–परमात्मा की प्रणयलीला को मूर्त करने में ऐसा कहते हैं।

विरह के पद– संत शिवनारायण की प्रवृत्ति विरह के प्रसंगों की कल्पना तथा उनके भाव–विस्तार में अधिक रमी है। भाव गांभीर्य तथा रसात्मकता की दृष्टि से ये पद अधिक प्रभावपूर्ण और रमणीय हैं। संत कवि ने इन पदों में प्रकृति को उद्दीपन विभाव के रूप में ग्रहण किया है जो कि निम्न पद से स्पष्ट होता हैः–

तड़प तड़प उठे जियरा कवन विधि राखव हो।
ललना हमरो बलम परदेश संदेश न पावल हो धूवा।
चाँदनी रतिया अँजोरिया सोहैले आधी–रतिया हो।
ललना पापी रे पपिहरा बोले आधी रतिया त बोलिया सुनावल हो।
पपीहरा शब्द सुनि जगलों तो मन अनुरागल हो।
ललना खोजत फिरलों पिया आपन सो पंथ न पथिक देखों हो।

एक बन गइलों दूसर बन तिसरा में कुंज बन हो।
ललना रोइ रोइ भरलो शरीर नयन भइले सागर हो।
नाहीं देखों नाव नहीं देखों बेड़ा नहीं केहु आपन हो।
ललना नाहीं रे केवट करुवार कवन विधि उतरब हो।
निरगुण पुरुष पुरान आइले तेहि अवसर हो।
ललना गुरु के चरन चित लावल, तो **शिवनारायन** हो।[10]

उपर्युक्त पद न केवल रमणीय एवं भावपूर्ण है, वरन् रस के सभी अंग–उपांगों से युक्त भी है। भक्त कवि स्वयं आश्रय है। गुरुरूप में गृहीत निर्गुण पुरुष पुराण आलम्बन। चाँदनी रात, पपीहे की बोली उद्दीपन विभाव हैं। रो–रोकर नेत्रों का अश्रुपूर्ण हो जाना सात्विक अनुभव माना जा सकता है। प्रारम्भ में विरह की तीव्रता है किन्तु अंत में आध्यात्मिक संयोग में पद की समाप्ति कर दी गयी है। प्रधानता विरह–भावना की ही है। विशुद्ध विरह की अनुभूति से पूर्ण एक पद निम्नवत है–

पापी रे पपिहरा बोले आधी रतिया।
पिया परदेश गइले भेजे नाहीं पतिया।
`जिया भयावन लागे फाटे मोर छतिया।
पिया मोंहि राखि गइले दिन चार थतिया।।
रतिया सोवत नाहीं, दिन जोहों बटिया।
छन छन सोचत कटे दिन रतिया।
पिया नाहिं मिलले हमरो संघतिया।
जोवना उमगि गइले कासे कहों बतिया।
शिवनारायन दिहले गुरु पतिया।
सबहि सुनाइ चले दिन रतिया।[11]

संत शिवनारायण के विरह सम्बन्धी कुछ पद तो रीतिकालीन हिन्दी कवियों से होड़ लेते प्रतीत हो रहे हैं जो कि निम्न पद से स्पश्ट है–

पपीहरा जनि बोलो यहि ओर।
निशि दिन गरजि गरजि डरवावे श्याम घटा चहुँ ओर।
बरसत बूँद भरो नदी नारा बहुत दुखित जीव मोर।
कन्त विदेश संदेस न पायें उपजि विरह तन जोर।
शिवनारायन विनती करत हैं मानहु इतना निहोर।।[12]

हिन्दी साहित्य के मध्ययुग में उद्धव और गोपी का प्रसंग विरह–वर्णन का एक अनिवार्य अंग सा मान लिया गया था। इसीलिए निर्गुण संत कवियों ने भी, जो केवल विरह की भावना को ही व्यक्त करना चाहते थे, इस प्रसंग की अवतारणा की है। इन संतों के काव्य में उद्धव एक माध्यम मात्र हैं जिनके सामने विरह की तीव्रता व्यंजित करके साध्य तक उसके

पहुँचाये जाने की आशा की जा सकती है। इसके अतिरिक्त उनके व्यक्तित्व की और कोई महत्ता नहीं है। संत काव्य में वे उपालम्भ या व्यंग्य के पात्र भी नहीं बनाये गये हैं। संत कवियों का दृष्टिकोण उनके प्रति पूज्य भाव का ही प्रतीत होता है। शिवनारायण साहब ने कुल तीन या चार पदों में ही उद्धव प्रसंग की अवतारणा की है। इस प्रकार भाव–सरसता तथा भाषा रमणीयता दोनों दृष्टियों से संत शिवनारायण के इन पदों में काव्यत्व के दर्षन होते हैं।

प्रेम–लीला की रसात्मकता– परवर्ती संतों में प्रायः सभी प्रियतम का सान्निध्य मात्र चाहते हैं। उससे क्रीड़ा करना चाहते हैं परन्तु उसमें आत्मनिलय नहीं करना चाहते। केवल **कबीर दास** जी एकमेक होकर मिलना चाहते हैं परन्तु उस मिलन के आनन्द का अनुभव भी करना चाहते हैं। संत शिवनारायण का शांत रस एवं प्रणयानुभूति भाव गृहीत पद निम्नवत है–

नर चेत करो जनि भूलि परो काहू बातन में यह देष बिराना
करी आपु बिचार देखि मन यार यही संसार न केहू अपाना।
दिन जात चला तब का करिहो घर **शिवनारायण** आपन जाना।[13]

षांत रस का आलंबन संसार की असारता का बोध या परमात्म तत्व का चिंतन माना गया है। उपर्युक्त पद में संसार की असारता का बोध स्पष्ट है। शिवनारायण साहब को तो सत्संग से ही संत जीवन–यापन की प्रेरणा मिली थी–

एक दिन संत सभा महँ गयेऊ। चर्चा शब्द होत तहाँ रहेऊ।
चर्चा सुनत बहुत सुख पाई। **शिवनारायन** सुनि मन लाई।
सुनत सुनत मोरा मन पतिआई। दिव्य ज्ञान जब चित्त में पाई।[14]

प्रेमलीला में आध्यात्मिक श्रंगार के प्रसंग को उठाते हुए डॉ0 बड़थ्वाल ने कहा है–

'यद्यपि निर्गुनी संतों के प्रेमरूपक कभी–कभी श्रंगार भाव तक पहुँचते हुए जान पड़ते हैं, फिर भी उससे उनके चित्त का विपर्यय नहीं सूचित होता। इनके श्रंगारात्मक प्रतीकों से यदि उन्हें श्रंगारात्मक कहा जा सकता है तो केवल यही सूचित होता है कि ये परमात्मा को एकान्त भाव के साथ चाहते हैं और यही एकमात्र आधार उस विशिष्ट चेतना के लिए भी है जो आत्मद्रष्टा लोगों की विशेषता है।'[15]

सम–सामयिक व परवर्ती संत कवियों में काव्यत्व– शिवनारायणी सम्प्रदाय के सम–सामयिक तथा परवर्ती संतों में रामनाथजी, सदाशिव साहब, लखनराम, लेखराज, जुवराज तथा गेंदाराम और राजरूप आदि प्रमुख रूप से प्रसिद्ध हैं। इनके पद शब्दावली की प्रतियों में भी उल्लिखित और संगृहीत मिलते हैं। यहाँ पर संक्षेप में इनके काव्यत्व पर प्रकाश डालने का प्रयास किया जायेगा।

संत रामनाथ– संत शिवनारायण के सर्वप्रधान शिष्य माने जाते हैं। काव्य–सामग्री के नाम पर इनके कुल 30 पद मिले हैं। यह पद भी शब्दावली की कई प्रतियों से मिलाकर संगृहीत हुए हैं परन्तु सम्प्रदाय वाले इनके पदों की संख्या लगभग 60 बताते हैं। पदों को देखने से इनकी काव्य शक्ति साधारण सी प्रतीत होती है। हाँ इनका शिवनारायण साहब के पद–चिन्हों पर चलने का प्रयत्न अवश्य शलाध्य प्रतीत होता है। इनके प्रणय गीत और सोहर विशेष रूप से

सुन्दर बन पड़े हैं। उनमें भावानुभूति के साथ भोजपुरी की मिठास भी है। इनका एक सोहर निम्नवत है–

एक धनि अँगवा से पातर दूसरे गरभ भइले हो।
ललना उठले पँजरिया के पीर नाहीं केहु आपन हो।
सासू मोरा सुतले अँगनवाँ ननद गजओवर हो।
ललना पिया मोर सुतले महलिया त कैसे जगाइव हो।
झमइक के चढ़लो अटरिया खिरकिया लाग झँकलों हो।
ललना लहुरा देवरवा निरमोहिया त बसिया बजावत हो।
रामनाथ सोहर गावल गाइके सुनावल हो।
ललना जनमत त्रिभुवननाथ संतन सुख पावल हो।[16]

ग्राम्य भाषा में परिस्थिति एवं वातावरण का सुन्दर चित्रण उपर्युक्त पद में उपस्थित किया गया है। ग्रामवधू आसन्न प्रसवा है। स्वाभाविक लज्जा के कारण वह अपनी वेदना का मर्म प्रकट करने में असमर्थ है। विशेषकर ऐसी परिस्थिति में जबकि उसके पति, सास तथा ननद गृह के विभिन्न भागों में अलग–अलग सो रहे हैं। किसी प्रकार अट्टालिका पर चढ़कर वह झाँक रही थी कि निर्मम छोटे देवर ने सम्भवतः उसकी उपस्थिति का संकेत पाकर वंशी बजा दी। उसका कष्ट स्वयं प्रभु ने उसी कोख में अवतार लेकर दूर कर दिया। उपर्युक्त पद साम्प्रदायिक भावना से सर्वथा मुक्त है। उसमें लोक जीवन की सहज अनुभूति का चित्रण लोकगीत में ही किया गया है। इस प्रकार के सोहर रामनाथजी के जन्म स्थान में अब भी प्रचलित हैं और गाये जाते हैं।

संत सदाशिव– इनके प्राप्त पदों की संख्या 15 से अधिक नहीं है। फिर भी उससे स्पष्ट है कि सम्प्रदाय के अन्य सभी संतों में इनका काव्य की दृष्टि से विशेष महत्व है। अपेक्षाकृत ये पढ़े–लिखे भी ज्ञात होते हैं। इनके पदों का विषय भी वही है, जो रामनाथ जी तथा अन्य संतों का है। इनकी आध्यात्मिक होरी का एक रमणीय चित्र निम्नवत है–

आज बृज रंग होरी ये मोहन।
अपने अपने मंदिर से निकलीं केहु साँवर केहु गोरी ये मोहन।
गोरी गोरी बहियाँ हरी हरी चुरियाँ नाजुक बहियाँ मरोरी ये मोहन।
उड़त गुलाल लाल भए बादर अबीर लिए भर झोरी ये मोहन।
बाजत ताल मृदंग झाँझ डफ ढोलक मधुर टिकोरी ये मोहन।
गोरी के मुख पर तिलक विराजे साँवरि के मुख पर रोरी ये मोहन।
संत समाज सदाशिव खेलत संतपति बलिहारी ये मोहन।
आजु बृज रंग होरी ये मोहन।

उपर्युक्त पद न केवल भाव–रमणीयता वरन् भाषा के माधुर्य और प्रवाह तथा शब्द चयन की दृष्टि से भी उत्तम है। सबसे बड़ी विशेषता है वातावरण की सृष्टि। उपर्युक्त पद

के पढ़ने से वस्तुतः होरी का चित्र सामने आ जाता है। यदि यह चित्रण संत समाज की आध्यात्मिक होली का न होकर भौतिक होली का होता तो श्रंगार रस का सुन्दर उदाहरण माना जाता। संत सदाशिव के प्रणय एवं उद्‌बोधन गीत भी अच्छे हैं। प्रियतम से मिलन की उत्कृष्ट अभिलाषा कभी इन्हें योगिन होने को बाध्य करती है और कभी कलारिन।

जोगवा करबों बनाय मैं जोगिन होइहों।
जोगिन होइ सिर जटा बढ़इहों अंग भभूत रमैहों।
सुन्दर गिरिधर के कारण कुल की लाज गँवैहों।
खोलहु चीर पहिनो मृगछाला, ये मन कर्म नसैहों।
त्रिकुटी मध्य में बैठ के मन ही हिलोरा लैहों।
सब संतन के बोली लैके मन परतीत बढ़ैहों।
कहे सदाशिव जोग युक्ति करि प्रेम प्रीति रस लइहों।
शिवनारायन है गुरु पूरा घर बैठे दर्शन पैहों।

यहाँ पर सिर्फ इतना ही कहा जा सकता है कि संत शिवनारायण के अतिरिक्त इस सम्प्रदाय के अन्य सभी संत कवियों में सदाशिव साहब का स्थान काव्य की दृष्टि से प्रथम है।

संत लखन राम– सम्प्रदाय के प्रचारकों में सर्वप्रमुख तथा शिवनारायण साहब के शिष्यों में द्वितीय स्थान होने पर भी इनके पदों का शब्दावली की प्रतियों में प्रायः अभाव सा ही है। काव्य विषय इनका भी वही है जो अन्य संतों का है। इनकी भाषा में कहीं–कहीं उर्दू के शब्दों की भरमार है। किन्तु ऐसा वहीं हुआ है जहाँ खड़ी बोली की शैली का अनुसरण किया गया है। अलंकारों में रूपक का प्रयोग इन्होंने सफलता पूर्वक किया है। कहीं–कहीं उपमा भी सुन्दर बन पड़ी है किन्तु उसमें परम्परागत उपमेयोपमानों के होने के कारण अधिक चमत्कार नहीं आ सका है। इनके उद्‌बोधन गीतों में विश्वास की मात्रा स्पष्ट परिलक्षित होती है जो कि निम्न पद से स्पष्ट होती है–

जग में क्या भूला फिरत गँवार
जैसे मटुका डोलत चक्र पर वैसे डोलत संसार।
काट काट कोहार देखावे तबहूँ न लोग पतियावे यार।
ऐसो शब्द सतगुरु हि लखावे समझु ले मन यार।
लखनराम गुरु चरण शीषधर कहत अनूप विचार।

निस्संदेह संसार की असारता को सजीव करने के लिए इससे सुन्दर उपमा कदाचित् नहीं हो सकती। मटुका का चक्रनर्तन संसार के कर्मनर्तन को सजीव कर देता है। जिस प्रकार मटुका स्थिरता चाहते हुए भी नर्तन के लिए विवश हो सकता है, वैसे ही संसार जीवन में स्थिरता चाहते हुए भी अज्ञात शक्ति के द्वारा कर्मनर्तन की अबाध प्रक्रिया के लिए विवश है। उपमा का यह सौन्दर्य यदि लखनरामजी का अपना होता तो अतीव सुन्दर था। किन्तु इस प्रकार की उपमाएँ इनके पूर्ववर्ती संतों तथा वेदांत साहित्य में प्रचुर मात्रा में

उपलब्ध हैं। शिवनारायणी सम्प्रदाय के संत कवियों में रामनाथजी और लखनराम को काव्य–दृष्टि से एक ही कोटि में रखा जा सकता है।

लेखराज और जुवराज– संत लेखराज और जुवराज दोनो नरौनी वंश के राजपूतों के भाट थे। संत शिवनारायण साहब की प्रसिद्धि और प्रभाव के कारण इन लोगों ने भी सम्प्रदाय में प्रवेश किया। चारण और भाटों में कवित्त शक्ति सहजात होती है। इसका परिचय आज भी घूम–घूम कर भीख माँगने वाले भाट देते हैं। लेखराज और जुवराज को भी कम से कम काव्य नियमों का ज्ञान सम्प्रदाय के अन्य सभी संतों से अधिक रहा होगा। जहाँ और संतों ने पदावली की रचना की है या लोक गीतों में अपने को व्यक्त किया है, वहाँ इन दोनो संत कवियों ने सवैयों की भी रचना की है। इसके अतिरिक्त इनके द्वारा रचित सवैयों में तन्मयता का अभाव किन्तु वर्णन शक्ति का प्राधान्य स्पष्ट झलकता है। अभाग्यवष इन कवि–द्वय के कुल मिलाकर 5 या 6 पदों से अधिक देखने को नहीं मिलते हैं। लेखराज का कुल एक सवैया प्राप्त हो सका है जबकि जुवराज के दो पद और तीन सवैये मिले हैं। छंदों की इन अल्प संख्या के आधार पर इनके काव्य विषयों का उल्लेख ठीक–ठीक नहीं किया जा सकता। लेखराज के एकमात्र सवैये में संतों के आनन्दमय जीवन की झलक दिखती है–

छाँह न धूप बयार नहीं दिन आड़ से मेघ झरे घन सीते।
तहँ संत के संग बने सब रंग बजावत ढोल गावत गीते।
तहँ सूरत रूप निरन्तर अन्तर मन मान रहे निष वासर चीते।
लेखराज कहै धन्य **शिवनारायन** सोइ है जे आनन्द में बीते।।[17]

उपर्युक्त कथन सम्भवतः संत देश के वातावरण से सम्बन्ध रखता है। ऐसा लगता है कि वर्णन के साथ कवि की तन्मयता नहीं है। यही विशेषता जुवराज के छंदों में भी है। जुवराज ने एक सवैये में इस भौतिक संसार के कर्म–बन्धन की दुरूहता तथा संतों द्वारा उससे मुक्त होने की सरलतम राह प्रस्तुत करने की चर्चा की है–

डाल दियो इहाँ जाल पसारि के, निबहन कहँ कोई अंत न पावे।
भ्रम भूलि रहे अरुझाय परे, तब संतन्ह आइ के राह बनावे।
संत के देष के पंथ चढ़े, जहँ **शिवनरायन** आपु कहावे।
जियराजेउ साफ वहाँ की कहे, जहाँ संत विलास विलास मनावे।

सारा संसार कर्म–बन्धन से ग्रस्त था। निर्वाह का कोई मार्ग न था। सभी भ्रमित थे और उलझे हुए थे। संतों ने आकर मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया। उस संतदेश के मार्ग पर अग्रसर होकर ही संत शिवनारायण आत्मरूप से प्रतिष्ठित हैं। अनुभूति के अभाव, वर्णन की विशदता तथा गीति–पद्धति को त्यागकर सवैया छंद के प्रयोग ने इन दोनो भाट कवियों को सम्प्रदाय के शेष संत कवियों से अलग ला खड़ा किया है। एक अन्य सवैये में जुवराज ने संत देश का वर्णन करते हुए कहा है–

संत नियारा होय निरखत है जहँ अनन्त सखी सब पाया है।
जहँ ताल मृदंग वो चंग सबै कोइ आपना रंग रँगाया है।

संत के देश के पंथ चढ़े जहाँ **शिवनारायण** आपु कहाया है।

जिवराजेउ साफ वहाँ की कहे, जहाँ संत वेलास वेलास बनाया है।[18]

संत गेंदाराम– यह रामनाथ जी के शिष्य कहे जाते हैं। इनके कुल तीन पद प्राप्त हो सके हैं। काव्यत्व की दृष्टि से ये पद साधारण श्रेणी के हैं। काव्य विषय– भक्ति भाव, संसार से वीतरागिता का उपदेश तथा आध्यात्मिक श्रंगार है। पद अपेक्षाकृत छोटे हैं। भाव सरल और बोधगम्य है। भक्तिभाव पूर्ण एक पद निम्नवत है–

भजु मन संत पुरुष के चरना।

असुर सँधारन तारन तरना। काल कर्म भय पातक हरना।

भव भय भंजन जन सुखदायक तुम गुन अमृत सके को बरना।

गेंदाराम दया सत गुरु के निशि बासर उर अन्तर धरना।[19]

आध्यात्मिक श्रंगार के पदों में प्रणयानुभूति अपेक्षाकृत (भक्तिभावना से) अधिक तीव्र है। एक उदाहरण इसी प्रकार है–

गाँठ परी पिया बोले नहिं हम से (धुहा)

जो मैं जनती पिया अस होइहैं, काहे के प्रीति लगवतीं यहि ठग से।

जो मैं जनती पिया मोर अइहैं फुलवन सेज बिछवतीं अपने मन से।

दहिया परसत परली छिटकिया इतनी गुनहिया पिया माफ करो मोसे।

गेंदाराम दया सतगुरु की लखन राम मिले गम से।[20]

पदों में किसी प्रकार की अलंकारिता के दर्शन नहीं होते। न तो काव्यशास्त्र सम्बन्धी जानकारी का ही परिचय मिलता है।

संत राजरूप– अन्तस्साक्ष्य के आधार पर इनका सदाशिव साहब का शिष्य होना प्रमाणित होता है। इनके भी कुल चार पद प्राप्त हो सके हैं। विशेषता यह है कि यह सभी पद आध्यात्मिक श्रृंगार सम्बन्धी हैं। प्रियतम से मिलन की आकांक्षा, प्रणय की अनुभूति तथा विरह की अभिव्यक्ति यही इनके प्राप्त पदों का विषय है। काव्य–दृष्टि से यह पद अच्छे हैं। अभिव्यक्ति के पीछे कवि के हृदय का तादात्म्य जान पड़ता है। प्रियतम रूप में कृष्ण का चित्रण है और कहीं–कहीं केवल प्रीतम शब्द का प्रयोग किया गया है। कृष्ण का नाम नहीं आया है। प्रियतम से मिलन की आशंका सम्बन्धी उनका एक पद निम्नवत है–

सैंया दूर देशवा हो गवन कइले मोर। नैहर लोगवा हो कठिन कठोर।।

ससुरा पिया जी के लागल चित मोर। जइबों ससुरवाँ हो मानहु निहोर।।

पहिरबों चुँदरिया हो रंगाइ सराबोर। जरामरन सुनि चित ना लागे मोर।।

अनहद बाजा बाजे उठेला हिंदोर। सतगुरु संत **सदाशिव** मानहु निहोर।।

राजरूप हो कहले कर जोर।[21]

प्रियतम दूर देश चला गया है। भक्त प्रेमिका का चित्त प्रियतम के देश में लगा है। इसके स्वाभाविक प्रेम–भावना के अतिरिक्त दो कारण भी हैं। प्रथम तो नैहर के लोगों

(सांसारिक लोगों) का व्यवहार सहिष्णुतापूर्ण नहीं है, दूसरे भक्त प्रेमिका को यह भी ज्ञात हो गया है कि यह संसार जरा और मरण से ग्रस्त है। प्रियतम के देश में अनाहत नाद की ध्वनि उसे और भी आकर्षित कर रही है। सब मिलाकर आध्यात्मिक श्रृंगार के सहज और सरस पदों में उपर्युक्त पद परिगणित हो सकता है। विशुद्ध काव्य–दृष्टि से देखा जाय तो साम्प्रदायिक रूपकों और संकेतों के कारण रसात्मकता में बाधा पड़ती है और वही बाधा यहाँ पर भी है। अनुभूति की तीव्रता, भावों की सरसता और अभिव्यक्ति की सरलता होते हुए भी राजरूप को काव्य लक्षणों का ज्ञान भी था, ऐसा नहीं कहा जा सकता। पदों में किसी प्रकार की कलात्मकता के दर्शन नहीं होते। रूपक, जो संतों के काव्य में स्वतः आ जाता है, उसका भी कोई संकेत इनमें नहीं मिलता। कथन में वक्रता या चमत्कार लाने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया है।

संत लालदास– शब्दावली में इनका केवल एक सोहर छंद संग्रहीत है। उस छंद में दुःखहरण गुरु का नाम आया है। इससे यह प्रकट है कि यह भी शिवनारायण जी के ही सम–सामयिक रहे होंगे और बहुत सम्भव है कि उनके सम्प्रदाय से भी सम्बन्धित रहे हों। शब्दावली में संग्रहीत पद में किसी प्रकार का आध्यात्मिक संकेत नहीं है। जिस प्रकार के सोहर गीत गाजीपुर, बलिया और बनारस आदि भोजपुरी प्रदेशों में पुत्रोत्पत्ति के समय गाये जाते हैं ठीक उसी प्रकार पिथौरागढ़ के शिवनारायणी सम्प्रदाय के लोग भी इसे गाते हैं। अनुभूति की सरलता, वातावरण के चित्रण की सजीवता तथा लोकजीवन की सरसता के साथ भोजपुरी भाषा का निजी माधुर्य भी उसमें दर्शनीय है। छंद इस प्रकार है–

अटन मँगाव सिल लोढ़वा बाँटन मद पीपर हो।
ललना दिलिया से ननद बुलाउ रगड़ के पीसे पीपर हो।
पिपरा जो पिसलिन रगड़ के कटोरवा उठावल हो।
ललना मैं तो लेबों नाक के बेसरिया जो देबों मद पीपर हो।
नाक से उतरलिन बेसरिया तो फुफुती छिपावल हो।
ललना इ तो मोरा बाबा के गढ़ावल तो नाहिं देबों बेसर हो।
लालदास सोहर गावल **दुःखहरण** गुरु पावल हो।
ललना बढ़ल प्रेम नित नई तो सब सुख पावल हो।[22]

निष्कर्ष– शिवनारायणी सम्प्रदाय के साहित्य की अभिव्यक्ति प्रणाली तो पूर्णतया लोक–साहित्य की विशेषताओं को लिए हुए है। विचार–प्रधान तथा उपदेशात्मक होने के कारण गुरुन्यास, संत उपदेश, संत सुन्दर तथा संत आखरी आदि की भाषा में सरसता चाहे भले ही न हो किन्तु सरलता की दृष्टि से इन समस्त साहित्यिक ग्रन्थों की भाषा लोकभाषा के अति निकट है।

संदर्भ

1. शिवनारायण 'शब्दावली', चंद्रवार की हस्तलिखित प्रति, पद 350, पृ0 78।

2. शिवनारायण 'शब्दावली', ससना धाम में प्राप्त मुद्रित प्रति, पद 116, पृ0 41।

3. शिवनारायण 'शब्दावली', पद 472, पृ0 159।

4. वही, पद 499, पृ0 167।

5. वही, पद 60, पृ0 21।

6. वही, पद 62, पृ0 21।

7. वही, पद 56, पृ0 20।

8. वही, पद 57, पृ0 20।

9. वही, पद 61, पृ0 21।

10. वही, पद 47, पृ0 16।

11. वही, पद 365, पृ0 116।

12. वही, पद 35, पृ0 11।

13. शिवनारायण 'संत आखरी', पृ0 1।

14. शिवनारायण 'गुरुन्यास', पृ0 1।

15. बड़थ्वाल, पीताम्बर दत्त 'हिन्दी काव्य में निर्गुन सम्प्रदाय', अवध पब्लिशिंग हाउस, पानदरीबा लखनऊ, प्रथम संस्करण–सन् 1950, पृ0 366।

16. शिवनारायण 'शब्दावली', सोहर 294, पृ0 112।

17. वही, कवित्त 341, पृ0 133।

18. वही, पद 343, पृ0 134।

19. वही, पद 312, पृ0 130।

20. वही, पद 314, पृ0 130।

21. वही, राग बिदापद, पद 332, पृ0 129।

22. वही, पद 296।